अध्याय 5

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटकों में प्रगतिशील चिन्तन और लोक-जीवन की नयी व्याख्या

भूमिका :-

मनुष्य प्रगतिशील प्राणी है, चाहे वह कवि हो, साहित्यकार हो, कलाकार हो, वैज्ञानिक हो या साधारण व्यक्ति हो, वह किसी न किसी रूप में प्रगति करता रहा है और इस प्रगति का प्रमुख कारण उसका प्रगतिशील चिन्तन ही है। आदिम काल से आज तक की मानव द्वारा की गई विविध प्रकार की प्रगति उसके प्रगतिशील चिन्तन का साकार रूप है। 1936 इ.स.में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ का पहला अधिवेशन प्रेमचंदजी की अध्यक्षता में लखनौ में हुआ इस समय अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचंदजी ने स्पष्ट कहा है कि- "साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता।"[1] अतः यह स्पष्ट है कि किसी भी साहित्य में साहित्यकार का प्रगतिशील चिन्तन किसी न किसी रूप में व्यक्त होता ही है। जगदीशचन्द्र माथुर के नाटकों में भी प्रगतिशील चिन्तन की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में हुई है। इस प्रगतिशील चिन्तन में जीवन और साहित्य के प्रति देखने का उनका दृष्टिकोण आधुनिक ही है।

प्रगतिशील चिन्तन के अन्तर्गत मनुष्य के सर्वांगीण प्रगति सम्बन्धी विचार अनुस्यूत हैं, अर्थात् प्रगतिशील चिन्तन में मनुष्य के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विचारों में आधुनिकता प्रमुख रहती है। जब कि प्रगतिवाद में मुख्यतः आधुनिक अर्थशास्त्र को महत्त्व दिया गया है। प्रगतिवाद का मुख्य आधार "आर्थिक चिन्तन" ही है। जो मुख्यतः भौतिकवाद का प्रतिष्ठापक है, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद का समन्वय मार्क्सवादी विचार धारा है। हिन्दी में प्रयुक्त प्रगतिवादी शब्द मार्क्सवाद का हिन्दी रूपान्तर है।

मार्क्सवाद एक विश्ववैज्ञानिक भौतिक दर्शन है, जीवन विषय एक दृष्टिकोण है, मानव जीवन को समतल में रखनेवाला एक प्रयास है, वर्गविहीन समाजव्यवस्था का उद्बोधन है। मार्क्सवाद के प्रवर्तक कार्लमार्क्स और उनके मित्र फ्रेड्रिक एंजेल्स है। मार्क्सवाद के दो आधारस्तंभ है — 1) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और 2) ऐतिहासिक भौतिकवाद। इन दो आधारस्तंभों में भौतिकवाद महत्त्वपूर्ण शब्द है। भौतिकवाद जीवन और जगत के प्रति वस्तुवादी दृष्टिकोण है, अर्थात् सामाजिक यथार्थवाद है। भौतिकवाद धर्म, आत्मा को बिलकुल स्थान नहीं देता। उसका मूल तत्त्व पदार्थ या प्रकृति ही है। पदार्थ से ही भौतिक जगत नियमित, संचालित, विकसित होता है। भौतिकवाद का आविर्भाव इंग्लंड और फ्रान्स में 17 वी शताब्दी के बीच हुआ। मार्क्सने अपने पहले चिन्तकों से कुछ बातें

ग्रहण की, हेगेल्स के द्वन्द्ववाद, फायरबाख के भौतिकवाद और चार्ल्स डॉर्विन के वर्गसंघर्ष के सिध्दान्त को ध्यान में रखकर अपनी चिन्तन प्रणाली को प्रस्तुत किया, यह चिन्तन प्रणाली मार्क्सवाद नामसे परिचित है —

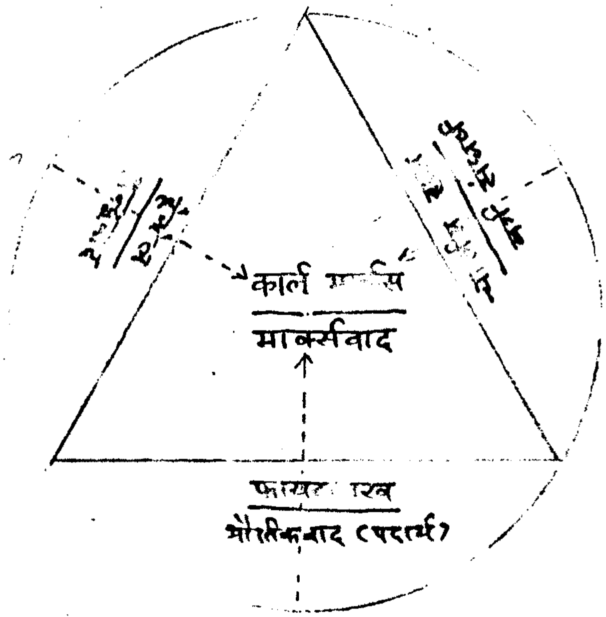

कार्लमार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1) परस्पर सम्बन्ध का सिध्दान्त
2) पदार्थ और गति
3) परिमाण मूलक परिवर्तन की गुणात्मक परिणति
4) अंतर्गती, वास्तविक असंगति विरोधी तत्वों की एकता है।
5) विकास की त्रिस्तरीय क्रमिकता
6) विकास का उर्ध्वस्तरीय स्वरूप

ऐतिहासिक भौतिकवाद की विशेषताएँ —

1) आदिम साम्यवादी युग
2) दास व्यवस्था युग
3) सामंती व्यवस्था युग

4) पूंजीवादी युग

5) समाजवादी युग [2]

मार्क्स के भौतिकवाद का मतलब यह है कि भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु में एक द्वन्द अंतर्निहित है और यह वस्तु का अंतर्निहित द्वन्द ही गति की मूल प्रेरणा है। भौतिक जगत के द्वन्द अथवा संघर्ष का क्रम होता है। वस्तु के दो परस्पर विरोधी तत्त्वों के संघर्ष को कार्लमार्क्स विकास का क्रम मानते है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत पदार्थ और गति के अतिरिक्त पदार्थ की गतिशीलता, परिवर्तन, विकास तथा विघटन आदि बातें भी आ जाती है।

मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का अर्थ यह है कि मानव अस्तित्व का निर्धारण उसकी चेतना द्वारा नहीं होता लेकिन उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण होता है। मार्क्स के अनुसार समाज का अस्तित्त्व उत्पादन सम्बन्धोंपर निर्धारण करता है। समाज की सम्पूर्ण सत्ता और व्यवस्था भौतिक तत्त्व पर ही आधारित है। यें तत्त्व सदैव गतिशील रहते हैं, इसलिए समाज भी सदैव प्रगति की ओर अग्रसर रहता है। अतः ऐतिहासिक भौतिकवाद में सामाजिक अस्तित्त्व की प्रगति दिखाई देती है। आदिम व्यवस्था से समाजवादी व्यवस्था तक की प्रगति ऐतिहासिक भौतिकवाद का ही चित्र है।

साहित्य में प्रतिबिम्बित प्रगतिवादी विचारधारा में मुख्यतः निम्नलिखित तथ्य दृष्टिगोचर होते हैं ---

1) वर्तमान समाज व्यवस्था तथा अंधश्रध्दा एवंम् अंधरूढियों के प्रति असंतोष ।

2) साम्राज्यवाद, सामंतवाद एवम् पूंजीवाद का घोर विरोध,

3) समाज का यथार्थवादी चित्रण

4) शोषितों एवंम् सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं जागृति,

5) नारी के प्रति प्रगतिवादी दृष्टिकोण

किन्तु साहित्य में "प्रगतिवाद" इस शब्द को पहले "प्रगतिशील" इस अर्थ से स्वीकारा गया था; क्योंकि पुरोगामी साहित्यकारोंने प्रगतिशील शब्द को "परिवर्तनशिलता" इस अर्थ में ग्रहण किया था। जिसमें उन्होंने "प्रगति" का अर्थ "परिवर्तन" और "शील" का अर्थ "गुण" माना था। उसमें "परिवर्तनशीलता" का अर्थ "गतिशील" गुणधर्मसे सम्बन्धित है। उन साहित्यकारों के बाद पाश्चात्य साहित्यकारोंने प्रगतिशील शब्द का अर्थानुवाद "प्रगतिवाद" के रूप में परिवर्तित किया। जिसमें प्रगति के गतिशील अर्थ को "वाद" के सीमा में जकड़ा दिया जो "वाद" एक देश-काल, विशेष और समाज की मनस्थिति, परिस्थितियों के अनुरूप अपनी बांदी-केंचुली त्यागकर नयें साचे में ढाला जाता है।"[3] स्पष्ट है

कि "प्रगतिशील" और "प्रगतिवाद", इन दो शब्दों में प्रगति है, जिसे गतिशील गुण या परिवर्तन प्रवृत्ति कहते है, किन्तु इन दो शब्दों में अन्तर आता है, "शील" और "वाद" इस शब्दार्थ से। अतः "प्रगतिवाद" शब्दार्थ इस तरह स्पष्ट किया कि "शील से हीन होनेपर भी प्रगति "वाद" का रूप धारण कर गई है और एक विशेष जीवन-संदेश को इष्ट मानकर अग्रसर हुई पर मानवीय जीवन के प्रति प्रगतिशीलता थाडे ही समय में उस जीवन-दर्शन का अतिरेक कर गई और प्रगतिवाद हिन्दी-साहित्य में इतिहास बनकर रह गया।"[4]

इस तरह "वाद" को सीमा-रूप में स्पष्ट करते हुए प्रगतिवाद का शब्दार्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। यद्यपि प्रगतिशील चिन्तन और प्रगतिवाद में सूक्ष्म अंतर है, फिर भी उन दोनों का चित्रण साहित्य में दिखाई पडता है। वास्तव में "प्रगतिशील" व्यापक शब्द है, किन्तु प्रगतिवाद एक निश्चित तत्ववदान को सूचित करता है।[5] अर्थात् साहित्य में प्रतिबिम्बित मार्क्सवादी विचारधारा में मार्क्स के विचारों को प्रमुखता दी जाती है, जब कि प्रगतिशील चिन्तन प्रणाली में मानव की प्रगति के समस्त आयामों को स्थान दिया जाता है।

माथुरजी के नाटकों में प्रगतिशील चिन्तन एवं लोकजीवन :

कोई भी साहित्यकार किसी एक दर्शन या वाद से पूरी तरह से प्रभावित होता है, ऐसी बात नहीं है, कभी-कभी श्रेष्ठ साहित्यकार भी अनेक दर्शनों, वादों से प्रभावित होते हैं अथवा उनके साहित्य में विविध दर्शनों, वादों की अभिव्यक्ति दिखाई पडती है। उदाहरण के तौर पर देखा जाय तो हम सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य को देख सकते है — पन्तजी छायावादी काव्य के आधारस्तंभ कवि है, साथ ही साथ उनके काव्य में प्रगतिवादी विचारों के भी दर्शन होते है, इतना ही नहीं अरविंद दर्शन का प्रभाव भी उनके काव्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। यही हाल कविवर निरालाजी का भी है। जगदीशचन्द्र माथुरजी के नाटय-साहित्य में भी हमें एक साथ प्रगतिशील चिन्तन और प्रगतिवादी विचार धाराएँ दृष्टिगत होती है। साथ ही साथ लोकजीवन की नई व्याख्या करने का माथुरजी का प्रयास भी स्तुत्य है। हमारी दृष्टि में "प्रगतीशील चिन्तन" और प्रगतिवाद में सूक्ष्म अंतर होने पर भी प्रगतिवादी चिन्तन प्रगतिशील चिन्तन का ही एक अविभाज्य अंग है। अतः जगदीशचन्द्र माथुरजी के नाटकों में प्रगतिशील चिन्तन के अन्तर्गत प्रगतिवाद तथा लोकजीवन दोनों को भी दर्शाया गया है। इन सबका [illegible] अनुशीलन यहाँ अभिप्रेत है,

अ) सामाजिक परिप्रेक्ष्य –

प्रचलित समाज व्यवस्था के प्रति असंतोष और एकता का प्रयास –

हिन्दी साहित्य में यद्यपि प्राचीन काल से रूढ़िगत सामाजिक संघर्ष के चित्रण मिलते हैं, साथ उन साहित्यकारों ने तत्कालीन वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति असंतोष भी व्यक्त किया है क्योंकि वह सामाजिक व्यवस्था रूढ़ियों से कलंकित थी। अतः इस सामाजिक व्यवस्था का चित्रण आज के वर्तमान समाज में भी दिखाई देता है, जिसके प्रति प्रगतिवादियों ने अपना असंतोष व्यक्त किया है। उनको मालूम है कि यह रूढ़ियाँ आज के समाज का महत्वपूर्ण दोष हैं, जिससे अनेक दोष निर्माण होते हैं, जो समाज की भयंकर आपत्ति बन जाते हैं। मगर यह रूढ़ियाँ अपने समाज से कभी अलग नहीं हो जायेगी क्योंकि सामान्य जनता के मन में इनके प्रति अतीव मोह है। प्रगतिवादियों ने इस रूढ़िवादी मोह का खण्डन करने के लिए उनके प्रति असंतोष व्यक्त किया है और अपने विकासवादी दृष्टिकोण को समाज के मन में प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न किया है क्योंकि "वर्गरहित समाज की स्थापना और वर्ग-संघर्ष की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि धार्मिक, सामाजिक आदि समस्त रूढ़ियों के प्रति विकासवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया जाये।"[6] भारत की सामाजिक संरचना में वर्ण व्यवस्था को स्थान दिया गया है। प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में चार वर्ण दिखाई पडते हैं – ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। नाटककारने वर्ण व्यवस्था और जाति-पाँति की विषमता पर कुछ विचार "पहला राजा" में व्यक्त किए है। इस नाटक में वर्णविषमता का संकेत राजा के चुनाव प्रसंग में स्पष्ट रूप से दिखाई पडते है। शुक्राचार्य स्पष्ट रूप से बता देते है कि ब्रम्हावर्त के मुनि और ब्राहमण जनता के नेता है और उनकी तपस्या तथा साधना शासक के लिए पथ-प्रदर्शक है। शासक का मुख्य कार्य धर्म का रक्षण करना है।[7] शुक्राचार्य के उक्त विचारों में वर्णाश्रम का संकेत और उनके कार्य स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसमें संदेह नहीं है कि कार्यव्यवस्था मानव-मानव में भेद निर्माण करती है।

नाटककार ने "पहला राजा" नाटक में वेन के शव मन्थन का प्रसंग चित्रित किया है। शुक्राचार्य वेन के शव का मन्थन करते है, परिणाम स्वरूप वेन की जंघा से एक पुत्र पैदा होता है जिसे कवष कहा गया है, और वेन की दाहिनी भुजा से और एक पुत्र पैदा होता है, उसे पृथु कहा जाता है। जंघा पुत्र को निषाद (कवष) कहा गया है और पृथु को क्षत्रिय के रूप में देखा गया। इस प्रकार नाटककार वेन के शव-मन्थन से ब्राहमण और क्षत्रिय वर्ण को चित्रित किया है। "ऋग्वेद के दशम मंडल में पुरुष सूक्त में समाज को ~~पुरुष सूक्त — समाज को~~ पुरुष का रूपक मानकर चार वर्णों की कल्पना साकार की गयी है।"[8] "आगे भगवद्गीता में गुणधर्म के आधार पर वर्णाश्रम व्यवस्था की प्रतिष्ठापना की गयी।"[9] और आगे कुल के आधार पर अनेक जातियों का निर्माण हुआ। इस वर्णभेद और जातिभेद के

कारण सामाजिक विषमता निर्माण हुई। नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "पहला राजा" नाटक में यह दिखाया है कि कवष को निषाद और निम्नजातिका मान लिया जानेपर कवष एक बार पृथु को छोडकर जंगल में चला जाता है। पृथु उर्वी को दस्युकन्या मानता है, वह यह समझता है कि उर्वी आर्यों के बैरी डाकुओं की कन्या है। उस समय वर्ण व्यवस्था के प्रति कवष अपना असंतोष प्रगट करता है। कवष पृथु से कहता है कि "छि! - - - उर्वी आर्य-विरोधी दस्यु और मैं आर्यों का दास निषाद!"[10] "पहला राजा" नाटक में कवष ओर पृथु युद्ध विषयपर चर्चा करते हैं; उस समय भी कवष और पृथु युद्ध विषयपर चर्चा करते हैं, उस समय भी कवष वर्णजाति व्यवस्था के प्रति अपना असंतोष इस प्रकार प्रगट करता है - "नहीं! यह धनुष मेरे लिए नहीं है। मैं जंघापुत्र हूँ! मानसपुत्र राजन, तुम्हारे साथ कंधा भिडाकर मैं युद्ध नहीं कर सकता।"[11] कवष द्वारा प्रगट हुआ वर्णभेद और जातिभेद के प्रति असंतोष आज जिन्हें निम्न जाति के लोग माना जाता है उस समाज का ही प्रतीक है।

कवष वर्ण और जाति भेद की विषमता देखकर ही पृथु से हटकर चला जाता है लेकिन रेगिस्तान पहुँचकर वह अथक परिश्रम करता है और सूखी सरस्वती नदी से पानी निकालने का प्रयास करता है। कवष उर्वी तथा अन्य आर्येतर लोगों की सहायता से एक विशिष्ट यंत्र द्वारा नदी का पानी निकालने में सफल हो जाता है और नदी पर बाँध बाँधने का प्रयास भी करता है। उस प्रयास में बांध-बांधने का काम आर्येतर लोग करते हैं, एक दिन पृथु उनके इस कार्य में सहयोगी बन जाता है, जब राजा होकर भी वह साधारण जनता में उनके परिश्रम में ~~सम्मिलित~~ सम्मीलित होकर काम करता है तब यह दिखाई देता है कि आर्य - आर्येतर संघर्ष कम हुआ है। वर्णभेद और जातिभेद में अब अन्तर नहीं रहा है और पृथु के आदर्शपर ब्रम्हावर्त के कुछ मजदूर अर्थात् आर्य उस नहर के काम में सम्मिलित होते हैं। नाटककार ने पृथु के माध्यम से वर्णभेद और जातिभेद मिटाने का दृश्य प्रस्तुत किया है और सामाजिक एकता स्थापित करने की कोशिश की है। पौराणिक पात्रों के माध्यम से सामाजिक विषमता के प्रति असंतोष और सामाजिक एकता का प्रयास नाटककार का समाज विषयक आधुनिक दृष्टिकोण ही है। आज - कल आधुनिक राजनीति में वर्णभेद या जाति भेद को मिटाने के लिए विश्वजनमत तैयार किया जा रहा है। यह भी बात हमारे मन में आ जाती है।

कलाकार के जीवन का आधार -

क) पृ[illegible] -

कोई भी कलात्मक लेखन अनुभूति और अनुभव पर आधारित होती है। "कोणार्क" की नाट्यानुभूति, काव्यानुभूति की भावभूमि पर स्थित है। अनुभूति की यह प्रामाणिकता उसकी अभिव्यंजना, शिल्प और शैली को विलक्षण शक्ति प्रदान करती है इसी कारण क

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

कोणार्क में कला चुनौती है। आधुनिक विचारों से देखा जाय तो "कोणार्क" में प्रतिभाशाली युवक धर्मपद के संवादों द्वारा कला के प्रति प्रगतिशील विचार व्यक्त हुए हैं। वह अपनी कला को जीवन का पुरूषार्थ समझता है, उसके विचार लिए कला चुनौती हैं। विशु की तरह चयन नहीं है। "कोणार्क" में धर्मपद अपनी शिल्प कला को आधुनिक दृष्टि से देखता है विशु की तरह पुरातनता की दृष्टि से नहीं। कविवर सुमित्रानन्दन पन्तजी जी के शब्दों में – "सहनशील विशु तथा विद्रोही धर्मपद में जैसे कला के प्राचीन और नवीन युग मूर्तिमान हो उठे हैं।"[12] अतः विशु और धर्मपद के कला सम्बन्धी विचारों में अन्तर है। जहाँ विशु कला के प्रति अपने प्राचीन आदर्शों को प्रस्तुत करता है, वहाँ धर्मपद कलासंबंधी आधुनिक विचारों से प्रेरित होकर विशु का मोहभंग कर देता है। समाज में पीड़ित वर्ग बडी संख्या में है। क्या किसान, क्या मल्लाह, क्या लकडहारा सब का जीवन त्रस्त है। कलाकार को इस पीड़ित वर्ग की ओर भी ध्यान दने की आवश्यकता है। वर्गसंघार्ष की ओर से आँखे मूँद लेना कलाकार का पुरूषार्थ नहीं है। इस में संदेह नहीं कि धर्मपद कला को वर्ण संघार्ष के चित्रण का साधन मानता है। अतः वह विशु से कहता है – "जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है – जीवन का पुरूषार्थ। अपराध क्षमा हो आचार्य, अपकी कला उस पुरूषार्थ को भूल गई है।"[13]

उत्कल राज्य में महामात्य चालुक्य का अत्याचार चल रहा है। साधारण जन उनके आतंक से ग्रस्त है और अकाल की लपटें भी जनता को ग्रस रही हैं। अतः इस समय कलाकार सुरक्षित जगह में रहकर यौवन और विलास की मूर्तियाँ बनाता रहें, यह ठीक नहीं है। धर्मपद के शब्दो में – "मगर यह भी तो उचित नहीं कि जब चारों ओर अत्याचार और अन्याय की लपटें बढ रही हो, शिल्पी एक शीतल और सुरक्षित कोनें में यौवन और विलास की मूर्तियाँ ही बनाता रहे।"[14] वास्तव में नाटककारने विशु के पौरूष को जगाने की कल्पना अपने नाटक में चित्रित की है। नाटक के अंत में माथुरजी ने यह दर्शाया है कि अपनी यौन-कला साधना में रत विशु चालुक्य के अत्याचार से भली-भाँति परिचित हो जाता है। धर्मपद के वैज्ञानिक ज्ञान से मन्दिर का कलश स्थापित होता है और मन्दिर में सूर्यदेव की मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है, इतने में चालुक्य का आक्रमण होता है। अतः उत्कल नरेश के अत्याचारी महामात्य के हाथों में इतनी महान शिल्प कला न जाय, इसलिए और अपने बेटे धर्मपद के मारे जाने के प्रतिशोध में स्वयं शिल्पी-विशु ही मन्दिर का एवं महान स्थापत्यकला का बड़ी तरकीब से नाश करता है। कोणार्क मन्दिर भग्न हो जाता है और विशु शोषक महामात्य राजराज चालुक्य से कला और कलाकार की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए विशु ... करता है, उसमें पौरूष जाग उठता है। नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "कोणार्क" नाटक का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "प्रणय की अठखेलियों और भाग्य के थपेडों के आधार पर कोणार्क के खँडहरों का सहारा ले एक रोचक कहानी प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे कलाकार का युग-युग के यौन पौरुष ...

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

सौंदर्य-सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है "कोणार्क" के खंडन के क्षण में फूट निकला हो। चिरन्तन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरूष को वाणी देने की धृष्टता की है।"[15] नाटककार ने यह भी स्पष्ट किया है कि कोणार्क में प्रगतिवादी स्वर मुखर हो उठा है। उनके ही शब्दों में - "कलाकार के मानस में कुण्डली मार कर सोये, पौरूष-नाग की अनाहत फूत्कार की जो कल्पना मैंने की है उसे समकालीन प्रगतिवाद की प्रतिध्वनि कह कर ही न दुत्कार दें।"[16]

ख) क्षतिपूर्ति -

"शारदीया" में कलाकार का रूप स्पष्ट होता है नरसिंहराव के व्यक्तित्त्व में, जब वह हैदराबाद के मुसलमान कारीगरों के हुनर की बात करता है। अपनी कला को स्पष्ट करते हुए वह कहता है कि - "बात यह है कि कारीगर अपने अंगूठें को ढरकी की तरह इस्तेमाल करता है। धागा उसी में पिरोया जाता है।"[17] - - - और तब जो साडी बुनी जाती है उसका वजन होता है पाँच तोला। उसे कहते है पंचतोलिया।"[18] इस पंचतोलिया साडी बुनने की कला में प्रगतिवादी विचार व्यक्त होते है क्योंकि कलाकार अपनी पूरी शक्ति से तथा अपना तन-मन लगाकर बुनता है। अपने उंगली में सुराख बनाना कला की दृष्टि से आधुनिकता ही है। यही आधुनिकता शारदीया में व्यक्त होती है। नरसिंहराव अंधेरी काल-कोठरी में इसी कला में अपनी शरण लेता है। इसे प्रगतिशील विचार कहना उचित है क्योंकि वह अपने इस कला में पूरी तरह से आत्मसमर्पित होता है और एक ऐसा कपडा बुनता है जो बेजोड है, इतना बारीक जैसे सबेरे का कुहरा। अपने व्यक्तिगत जीवन के दुःख-दर्द को भूलकर अपनी कला मे शरण जाना तथा कला के लिए अपने जीवन का आत्मसमर्पण करना यह प्रगतिवादी चिन्तन ही है। अतः नरसिंहराव के विचारों को प्रगतिशील विचार कहना ही उचित है क्योंकि वह जब प्रवंचको से प्रताडीत हो जाता है तब वह कला में शरण लेते हुए अपने मित्र जिन्सवाल स कहता है कि "सरदार आप गढपति से कह दीजिए कि मेरे लिए एक छोटा-सा करघा मंगवा दे। हैदराबाद के मुसलमान कारीगरों का हुनर मेरी उंगलियों में बस गया है। सरदार, वही मेरा संबल होगा। जब तक जिन्दा हूँ, तब तक बुनता रहूँगा रूपहले और सुनहरे पत्ते। हवा सी हल्की, कुसुम सी कोमल, चाँदनी सी झीनी, चाँदनी। शारदीया यही तो अस्ली चाँदनी है।- - - मेरी कालकोठरी में उसीकी ज्योती बसेगी।"[19] इस तरह हमने देखा है कि "कोणार्क" में कलाकार के लिए कला चुनौती बन जाती है किन्तु शारदीया में वही कला नरसिंहराव के लिए क्षति-पूर्ति का साधन बनती है। इस तरह नरसिंहराव द्वारा कला के प्रति शरण लेना नाटककार की दृष्टि से कला के प्रति प्रगतिशील चिन्तन है।

प्रेम संबंध के नये आयाम -

च) सारिका - धर्मपद (मातृ-पुत्र प्रेम वत्सलता) -

माथुरजी के "कोणार्क" नाटय-कृति में प्रेमसंबंधी विचार और आचार में आधुनिक

चिन्तन सहज ही दिखाई देता है, नाटक में प्रेम का पारम्परिक चित्र जरूर दिखाई देता है। लेकिन साथ ही साथ अवैध सन्तान को जन्म देकर उसका जीवन निर्वाह करने के लिए खुद अपमान सहकर और सकटों से मुकाबला कर अपनी सन्तान को एक आधुनिक वैज्ञानिक शिल्पी बना देना अत्यंत मौलिक बात है। 13,14 वी शताब्दी में अवैध सन्तान का जन्म देकर उसका निर्वाह करना कठिन बात थी लेकिन नाटककार ने यह दिखाने की कोशिश की है कि धर्मपद सारिका की अवैध सन्तान है और एक महान आधुनिक वैज्ञानिक शिल्पी के रूप में, वह कोणार्क मन्दिर के कलश की स्थापना करता है। अपनी अदभुत माँ का चित्र धर्मपद के शब्दो में देखा जा सकता है - "कैसी अदभुत थी मेरी माँ!- - -आंधियों के निर्दय झकोर में भी न झुकनेवाले ताल-वृक्ष की तरह। मुझे गोदी में लिये, बहुत पहल, जब वह नगर में आयी थी, तो कौन सहायक था? मजदूरी करके, गरीबी के कष्ट और वैभव के अपमान सहकर, उसने मुझे पाला।"[20] यहा हम यह देखते है कि धर्मपद की माँ कोई मामूली माँ नहीं है, केवल अपने बटे से प्यार करनेवाली माँ भी नहीं है, वह ऐसी माँ है जो अवैध सन्तान को जन्म देकर उसे महान शिल्पी बना देती है। मातृ-वत्सलता का यह नया रूप है। नाटककारने सौम्यश्री के माध्यम से कुंती का उदाहरण देकर महाभारतकालीन अवैध सन्तान की दुर्दशा का संकेत दिया है। वहाँ कुंती कर्ण को जन्म दती है, कर्ण उसका अवैध सन्तान है लेकिन अपन बेटे को (कर्ण को) नदी के प्रवाह में छोडकर अपना माता का दायित्व पूर्ण करती है लेकिन सारिका की बात दूसरी है। सारिका गर्भवती होनेपर विशु समाजभय से उसे छोड देता है लेकिन सारिका बेटे को जन्म देकर उसे महान शिल्पी बना देती है। माथुरजी के इस दृष्टिकोण में सारिका एक अदभुत माँ प्रतीत होती है। सारिका का पुत्र-प्रेम केवल परम्परागत पुत्र-प्रेम नहीं हैं। बटा अपने पैरोंपर खड़ा होकर एक नया जीवन प्रस्तुत करें यही उसकी धारणा थी ऐसा लगता है। धर्मपद के निम्नलिखित विचार देखिए - "माँ ने बहुत कुछ बताया, पर सब कुछ नहीं। उसने मुझे शक्ति दी, जिसके बल पर नन्हा बीज धरती को फाडकर नये जीवन का प्रतीक बनता है। उसने मुझे आँचल से ढँका भी और छुड़ाया भी।"[21]

छ) बायजाबाई - नरसिंहराव - प्रेम -

वस्तुतः "शारदीया" नाट्यकृति अनिंद्य सुन्दरी बायजाबाई और उसका प्रेमी नरसिंहराव के अधूरे प्रेम की कहानी है जो ऐतिहासिक घटनाओं क बीच जुडी हुई है। बायजाबाई और नरसिंहराव की कागल गाव की बाल्य-स्मृति में अंकित प्रेम जब यौवन के रास्तेपर पैर रखते है तो बायजाबाई "चंचल तितली मधुरिया भरी मधूरी"[22] बन जाती है और नरसिंहराव "परियों का शहजादा का नगर"[23] बन जाता है। ऐसे ही स्वच्छन्द और पवित्र प्रेम को माथुरजी ने मन की आंतरिक भावना से व्यक्त किया है। जिसमें शिशु बाल-सुलभ सारल्य है जो पवित्र बनकर प्यार की धाराओं में बहता है। ऐसे ही प्यार के सावन में जुदाई का मौसम आता है तो दोनों भी विवश और मजबूर बनते हैं,

एक दूसरे से मिलने के लिए दिल तडपते हैं, और अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं को तोडकर बायजाबाई अपने मन की बात अपने पिताजी से कहती है। प्रेमसंबंध में यही प्रगतिशील चिन्तन माथुरजी ने स्पष्ट किया है। अपने प्यार में झुर-झुर कर मरने के बजाय बायजाबाई अपने दिल की तथा अपने प्यार की बात पिताजी को बताती है, इसमें प्रेम सबंधी आधुनिक विचार व्यक्त होते हैं।

नरसिंहराव के युद्ध में जाने के बाद लौट न आना एक विचित्र घटना थी। बायजाबाई इंतजार करती है, हर घड़ी हर दिन। अपने प्रियकर से जुदा होने पर बायजाबाई जो विचार करती है वह प्रगतिशील चिन्तन ही है। रहिमन द्वारा सुनाये गए राधा और गोपियों की विरह अवस्था मे वह रहना नहीं चाहती। इस प्रसंग में नाटककार ने अपने आधुनिक विचार व्यक्त किय हैं। बायजाबाई के मन में निर्माण हुई शकाएँ और तत्पश्चात् किया हुआ इरादा माथुरजी का अपना प्रगतिशील विचार है जो उन्होंने बायजाबाई के शब्दों में व्यक्त किया है। निम्नलिखित वार्तालाप दृष्टव्य है -

बायजा : "- - - लेकिन पहले तू मेरे सवाल का जवाब दे।

सरना : कौन सा सवाल ?

बायजा : यही कि राधा और गोपियों ने मथुरा जाकर कान्हा को खोजा क्यों नहीं? रोती क्यों रही दिन रात? डूबती क्यों रही विरहाश्रुओं की धार में?

सरना : बाईसाहब, बाईसाहब यह मैं क्या देख रही हूँ तुम्हारे मुखड़े पर?

बायजा : सरनाबाई, मैं वह नहीं करना चाहती जो गोकुल की गोपियों ने किया। आँसुओं में नही डूबूंगी। - - - मैं जाऊँगी उनके पास।

सरना : कहाँ? मथुरा तो गोकुल के बहुत पास था।

बायजा : हैदराबाद पूना से दूर है, मगर बहुत दूर नहीं।"[24]

ऐसे ही प्यार में प्रगतिशील चिन्तन स्पष्ट करने के लिए नाटककार ने नाट्य-कृति का अंतिम दृश्य चित्रित किया है। जिसमें बायजाबाई और नरसिंहराव प्यार की बाजी हारने के बाद भी एक-दूसरे से मिलते हैं, जिसमें बायजाबाई एक महारानी है और नरसिंहराव एक अद्भुत कलाकार। वह अपने प्रेम की खातिर अपनी प्रियतमा को पंचतोलिया साडी भेंट देने के लिए अपने उंगली में सुराख बनाता है और अन्त में वह साडी बायजाबाई को प्रेमोपहार के रूप में अर्पित करता है। यहाँ भी प्रेमसंबंधी आधुनिक विचार ही व्यक्त होते हैं क्योंकि उंगली में सुराख बनाना कला की दृष्टि से आत्मसमर्पण होकर भी अपनी प्रियतमा के लिए जीवनदान ही है। बायजाबाई महारानी बनकर भी अपने प्रेम की खातिर नरसिंहराव को छुडाने के लिए आती है, वह अपने प्रेमी को अंधेरे तहखाने के बेदर्द पत्थरों के घेराव से बाहर निकालना चाहती है लेकिन प्यार की बाजी हारने से नरसिंहराव रिहाई नहीं चाहता है क्योंकि उसी अंधेरे तहखाने में उसकी शारदीया उसकी स्मृति में ज्योति बनी थी। प्यार की बाजी हारकर

रिहाई का जीवन जीना उसके लिए अंधेरे में ही जीना था। इसी कारण अंधेरे तहखाने में रहकर जीना उसके लिए प्रकाशपुंज जीना है। निम्नलिखित वार्तालाप देखिए -

बायजा : तुम चलो, नरसिंह। आज्ञा-पत्र मेरे पास है।

नरसिंह : नहीं, बायजाबाई। मैं यही रहूँगा, तुम जाओ, महारानी। तुम जाओ बायजाबाई, आसुओं में नहीं, मुस्कान में भीगती हुई।

बायजा : नरसिंह!

नरसिंह : और मैं यही रहूँगा, क्योंकि तुम यही हो। महारानी नहीं, बायजाबाई नहीं, लेकिन तुम। तुम, मेरी शारदीया! मेरी शारदीया- - - तुम जो मेरी हो, हमेशा थी, हमेशा रहोगी।"[25]

आ) राजनीतिक परिप्रेक्ष्य -

1) राजा का चुनाव -

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "पहला राजा" नाटक में शुक्राचार्य गर्ग अत्री आदि के माध्यम से राजा के चुनाव और स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है जो राजनीति की आधुनिक व्याख्या है। नाटककार ने धर्म और राजनीति का परस्पर संबंध शुक्राचार्य के माध्यम से व्यक्त किया है। शुक्राचार्य बताते है कि "हम ब्रम्हावर्त के मुनि और ब्राहमण। हम जो जनता के नेता है, हम अपनी तपस्या और साधना के कारण शासक का पथ प्रदर्शन कर सकते है। शासक को हमारे साथ शर्तें करनी होंगी।"[26] इस सन्दर्भ में वे यह भी स्पष्ट करते है कि राजा की सत्ता की बुनियाद एक सौदा होनी चाहिए परमेश्वर की देन नहीं। शुक्राचार्य धर्म और राजनीति को एकत्रित करते हुए कहते है कि - "राजा याने अनुरंजक। हम जिसे राजा घोषित करेंगे वही हमारा अनुरंजक और धर्म का रक्षक होगा, इसलिए नहीं की उसमें ईश्वर की शक्ति, या देवताओं के तेज का स्वरूप है, बल्कि इसलिए कि उसके अधिकारों की बुनियाद होगा हमारा दिया हुआ विधान, हमारी बाँधी गई शर्तें।"[27] इसमें संदेह नहीं है कि धर्म और राजनीति को एकत्रित करने से अनेक समस्याएँ खडी हो जाती हैं। आज स्वातंत्र्योत्तर भारत में हम यह देखते हैं कि भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट है लेकिन आज भी हम यह महसूस करते है कि कुछ राजनीतिक दल धर्म और राजनीति को एक-दूसरे में घुसेड देतें हैं और मानव-मानव में भेद निर्माण करते हैं। शुक्राचार्य की राजा के चुनाव संबंधी नीति एक प्रकार की सौदेबाजी ही है। इतना ही नहीं वह पूरी तरह से वर्णाश्रम पर आधारित है क्योंकि खुद को ब्राहमण मानकर शासक का मार्ग-प्रदर्शक बनने का दावा करना उनकी "शुक्रनीति" ही है।

2) राजनैतिक सौदेबाजी

"शारदीया" मे वर्णित राजनैतिक परिस्थितिका अंदाजा हमें नाटय-कृति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पढते समय ही लगता है क्योंकि उसमें शर्जेराव घाटगे की दुष्टता और कुटिलता का आभास स्पष्ट रूपसे व्यक्त हुआ है। स्वयं नाटककारने शर्जेराव घाटगे की राजनैतिक कूटनीति को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- " झूठ, फरेब और धोखाधडी के ताने बाने को परखते-परखते मैंने देखा कि इस तानेबाने का असली सूत्रधार न सिंधिया था, न नाना फडनवीस और न बाजीराव द्वितीय, बल्कि मराठा-इतिहास का अन्यतम और निराला धूर्त शर्जेराव घाटगे था।"[28] इससे यह स्पष्ट होता है कि "शारदीया" में राजनैतिक पथ भ्रष्टाचार, कुटिलता, दावपेंच और षड्यंत्र से भ्रष्ट हुआ था। जिसमें शर्जेराव घाटगे के अन्यतम कारनामे काम कर रहे थे। जिसकी नींव आत्मविश्वास से विश्वासघात की पूर्तता पर खडी थी। जिसका संदर्भ शर्जेराव घाटगे के प्रत्येक वार्तालाप मे मिलता है क्योंकि उसका हर इक वाक्य दांवपेंच और विश्वासघात करने के राजनैतिक षडयंत्र से भरकर पूर्ण हुआ है, वैसे तो इस नाटयकृति आधुनिक विचार तो स्पष्ट नही होते क्योंकि उक्त विचार सारे के सारे पुराने ढंग के हैं, उनमें नवीनता स्पष्ट नहीं होती, लेकिन शर्जेराव घाटगे की एक नई चाल राजनैतिक सौदेबाजी में स्पष्ट होती है और वह है अपनी फूल जैसे बेटी के अरमानों की आहुति देकर, या बेटी के जीवन की आहुति देकर अपनी महत्त्वकांक्षा का यज्ञ पूरा करना। उनके शब्दों में "नादान लडकी। तेरे पिता की महत्त्वाकांक्षा के यज्ञ को पूरा करने के लिए अगर तेरी आहुति की जरूरत हो तो भी मैं नहीं झिझकूंगा।"[29] राजनैतिक क्षेत्र में शर्जेराव घाटगे पहला बाप है जिसने अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए आत्मविश्वास देकर विश्वासघात किया और कूटनीति के राजनैतिक पथ पर अपने बेटी के जीवन की आहुति दे दी क्योंकि उसे यह मालूम था कि उसकी बेटी बायजाबाई नरसिंहराव से प्रेम करती है और उससे शादी करना चाहती है, लेकिन शर्जेराव की राक्षसी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा इतनी बढ जाती है कि वह अपने स्वार्थ के लिए बायजाबाई की शादी दौलतराव सिंधिया से कर देता है। शादी से पहले शर्जेराव घाटगे दौलतराव सिंधिया से आदेश पत्र पर दस्तखत करवाता है। दिल्ली के तख्त का प्रधानमंत्री बनने का उसका अरमान सफल होता है। सिंधीया के दस्तखत करने पर अपनी उन्माद अवस्था में शर्जेराव घाटगे कह उठता है- " आज से तुलजाजी उर्फ सखाराम उर्फ सर्जेराव सिन्धिया महाराज का प्रधानमंत्री हुआ। प्रधान मंत्री ... हा-हा-हा।"[30]

शर्जेराव घाटगे के राजनैतिक सौदेबाजी का फिर एक बार दर्शन होता है नरसिंहराव के बारे में सिन्धिया महाराज के मन में घृणा उत्पन्न करते हुए। जिसका अनुभव इस वार्तालाप से होता है — "आमने-सामने मराठों और मुगलों की सेनाएं पडाव डाले पडी है। युध्द का डंका बजने ही वाला

है। ऐसे समय में यह नरसिंहराव, वकालत कर रहा है- मुसलमानों की।"[31] इस से स्पष्ट होता है कि शर्जेराव घाटगे राजनैतिक सौदबाजी मे प्रवीण है क्योंकि वह विश्वास से विश्वासघात करता है। उसकी धूर्तता पूर्ण रूप हमारे सामने तब आता है जब वह नरसिंहराव को राष्ट द्रोह के झूठे इल्जाम में बंदी करके उसे सिन्धिया द्वारा फांसी की सजा दिलवाना चाहता है। इस तरह राजनैतिक सौदबाजी की यह चरमसीमा है। किन्तु नाट्यकृति में व्यक्त राजनैतिक सौदेबाजी में अकेला शर्जराव घाटगे सफल नहीं होता, तो दौलतराव शिंदिया भी सफल होता है। क्योंकि उसे अनुपम सुन्दरी बायजाबाई पत्नी के रूप में प्राप्त होती है (भले ही बायजाबाई को यह शिंदिया पसन्द क्यों न हो) और शर्जेराव घाटगे का सिन्धिया का महामंत्रीपद प्राप्त होता है। इस तरह राजनैतिक सौदेबाजी के ये दो उदाहरण मानवता की दृष्टि से अमानवीय है।

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "पहला राजा" नाटक में भी राजनैतिक सौदेबाजी को मार्मिक शब्दों में चित्रित किया है। शुक्राचार्य आदि ऋषिमुनि पृथु से सौदबाजी करते हैं वे पृथु पर कुछ शर्तें लाद देते है, वह शर्तें इस प्रकार हैं—

पहली शर्त : ब्रम्हावर्त के आश्रम और यज्ञशालाओंकी रक्षा करना।

दूसरी शर्त : प्रिय- अप्रिय विचार छोड़कर सब प्राणियों के प्रति एकसा भाव प्रकट करना ।

तीसरी शर्त : धर्म से विचलित होनेवाले लोगों को दंड देना लेकिन वेदपाठी ब्राम्हण अदंडणीय रहे।

चौथी शर्त : वेद प्रणीत शासन करना, और

पाँचवी शर्त : समाज को वर्णसंकरता से बचाना - आर्य जाति के रक्त में मिलावट नहीं होने देना।[32]

उपर्युक्त शर्तों से यह स्पष्ट होता है कि वह शर्त आधुनिक राजनैतिक सौदबाजी की ओर सैकेत करती है। 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र होनेपर तथा 26 जनवरी 1950 को भारत प्रजातंत्र राष्ट्र घोषित होने पर भी आज कल राजनैतिक सौदेबाजी की जाती है, इस सौदेबाजी को ही नाटककारने संकेतित किया है। "पहला राजा" नाटक में माथुरजी ने लिखित रूप में वह शर्त नहीं दर्शायी बल्कि कुशा की रस्सी को पाँच गाँठें देकर इन शर्तों को व्यक्त किया है। शुक्राचार्य यह पाँच गाँठोंवाली कुशा की रस्सी पृथु की कलाई में बांध देते है और पृथु से कहते है कि " —— यह कुशा ही विधान है, इसकी गाँठे ही राजधर्म है, जनपद का लोक प्रजा है और इस प्रजा को अनुरंजक आप हमारे राजा है।"[33] पृथु से शर्तों की स्वीकृति मिलने पर और पृथु की कलाई में गाँठ युक्त कुशा की रस्सी बाँधनेपर शुक्राचार्य पृथु को राजा घोषित करते है तत्पश्चात् अन्य मुखियागण और मुनिजन पृथु को पहला राजा के रूप में उद्घोषित करते है और सुत-मागध पृथु पर स्तुति सुमनों की वर्षा करते हैं। आधुनिक राजनीति की सौदबाजी का मार्मिक उदाहरण नाटककारने प्रस्तुत नाटक में दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

3) राजनैतिक अत्याचार और उसका विरोध

"कोणार्क" नाटय-कृति मूलतः नाटककार के हृदय में दूषित और विषम राजनैतिक परिस्थितियों से जो तीव्र प्रतिक्रिया हुई है उसी की अभिव्यक्ति है जिसमें प्रायः धर्मपद, विशु, राजीव सौम्यश्री का आवेश आक्रोश तथा अभिमान आत्मविश्वास स्वप्न, पुरुषार्थ आदि अनेक रूपों में उसका निरुपण मिलता है, किन्तु इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है — महामात्य राजराज चालुक्य का मोह भंग। कोणार्क की राजनैतिक पूर्व-परिस्थिति वैसे तो भ्रष्टाचारी, अन्यायी और अत्याचारी से परिपूर्ण भरी हुई है। उत्कल के महामात्य राजराज चालुक्य द्वारा गरीब मजदूर और निरपराध जनता पर अत्याचार किये जाते है। उनके अत्याचार में भीषण दंड की घोषणा की जाती है। तत्कालिन राजनैतिक अत्याचार तथा भ्रष्टाचारी राजतंत्र का स्पष्ट करने के लिए माथुरजी ने राजराज चालुक्य के पात्र की सृष्टि की है। वह अपने राजनैतिक अत्याचार तथा भ्रष्टाचारी भीषणता को स्पष्ट करते हुए वह शिल्पियों से कहता है कि "----- सुन लो और कान खोल कर सुन लो। आज से एक सप्ताह के अन्दर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ, तो तुम लोगों के हाथ काट दिए जाएगें"[34] ठीक इसी तरह महामात्य द्वारा राजनैतिक षड़यंत्र रचाकर अंत में जनता और उत्कल नरेश को भी फँसाया जाता है। उसका अन्याय और अत्याचार नाटककारने अपने नाटक में ज्यों की त्यों दिखाया गया है। उसी तरह माथुरजीने युवक शिल्पी धर्मपद द्वारा प्रस्तुत नाटक में अपने प्रगतिशील चिन्तन को भी व्यक्त करने का प्रयास किया है। प्रगतिशील विचारों की दृष्टिसे धर्मपद महामात्य द्वारा किए गए अन्याय, अत्याचार के प्रति अपने न्याय और हक के लिए लडना चाहता है। अत्याचारी राजतंत्र के प्रति धर्मपद के मन में विद्रोह उमडता है और यही विद्रोह धर्मपद अपनी सारे शिल्पी- लोगों में निर्माण करता है। धर्मपद महामात्य चालुक्य के दूत को एक समय इस प्रकार फटकारता है – "बहुत हुआ, बहुत हुआ दूत। क्या हम लोग भेड-बकरियाँ हैं, जो चाहे जिसके हवाले कर दीजाय? आज ही तो हमारे भाग्य का फैसला है। जिस सिंहासन को तुम आज डाँवाडोल कर रहे हो, वह हमारे ही तो कंधो पर टिका है। क्या उस पर वह बैठेगा, जिसके कारण सैकडों घर उजड चुके हैं। वह जिसने कोणार्क के सौन्दर्य-निर्माता शिल्पियों को ठीकरों से तुच्छ मान ठुकराया? कलिंग हमारा है और उसके अधिपति है हमारे प्रजापति वत्सल नरेश श्री नरसिंहदेव।"[35] इस प्रकार धर्मपद के इस प्रगतिशील विचारों से यह स्पष्ट होता है कि माथुरजी ने राजतंत्र में आत्मसमर्पण या आत्महत्या आदि पुरातन विचारों के बजाय अत्याचारी राजतंत्र के विरुध्द लडकर अपने न्याय और हक प्राप्त करने के लिए वर्ग संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। इस तरह जगदीशचन्द्र माथुरजी को "कोणार्क" एक पहला नाटय-प्रयोग है जो पुरातनता को प्रगतिशील विचारों से जोडता है।

4) पार्टीबाजी और दलबन्दी

जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "पहला राजा" नाटक में भृगुवंश और आत्रेयवंश के द्वारा पार्टीबाजी और उनकी पारम्पारिक स्पर्धा को आज के दलबन्दी की ओर संकेत किया है। उन्होने स्वयं नाटक के अंतमें पृष्ठभूमि के रूप में लिखा है कि "पार्टीबाजी नितान्त आधुनिक समस्या नहीं है, मुनियों के बीच इस तरह की दुर्भावना अपनी शक्ति और प्रभाव को जनता में कायम करने के लिए यदा-कदा उठती रही हो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।"[36] नाटककारने यह दिखाया है कि जनता के कल्याण के लिए नदीपर एक बांध बांधा जा रहा है लेकिन भृगु और आत्रेय आश्रमों के नेता एक हो जाते हैं और उस बांधपर आवश्यकता के अनुसार मजदूर नहीं भेजते। उर्वी और कवष की कृषिसिंचाई योजना के अनुसार नदी पर बांध बांधनेकी कोशिश की जाती है। कुछ दस्यु मजदूर उसमें सम्मिलित होते है। अधिक मजदूरों की जरूरत पडनेपर राजा पृथु मुनियों से और मजदूरों की माँग करता है लेकिन भृगु और आत्रेय आश्रमों के नेता उस समय मजदूरों को नहीं भेजते। इसका नतिजा यह होता है कि सहायता के अभाव से बांध का काम अधूरा ही नहीं तो बांध टूट ही जाता है। इस चित्रण से यह स्पष्ट होता है कि नाटककारने आधुनिक "ट्रेड युनियन" की ओर संकेत किया है। इसमें संदेह नहीं है कि नाटककार के द्वारा चित्रित उपर्युक्त चित्रण से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दलबन्दी और पारस्पारिक स्पर्धाएं जनहित के कार्य में बाधा डालते हैं। कभी-कभी ट्रेड युनियन के द्वारा जनहित के कार्य में भी बाधा डाली जाती है। माथुरजीने "पहला राजा" नाटक में इसी आधुनिकता का चित्र खडा किया है।

5) राजनीतिक भाषण और नारेबाजी

राजनीति की चाल हमेशा उल्टी होती है। राजनीति में आज के नेता बोलते हैं और करते दूसरा ही कुछ। उनकी उक्ति और कृति में मेल नहीं होता। उनके भाषण और नारेबाजी उनके व्यक्तिगत स्वार्थ के साधन बन जाते हैं। आधुनिक राजनीतिका सबसे प्रमुख हथियार भाषण और नारेबाजी ही माना जा सकता है। भारत में भाषण और नारेबाजी से ही अधिक काम किया जा सकता है, उसके बलपर किसी भी नेता या दल को बनाया भी जा सकता है और बिगाडा भी। "पहला राजा" नाटक के प्रारंभ में अत्याचारी वेन की मृत्यु के बारे में चर्चा की जाती है। नाटककारने नटी और सूत्रधार के माध्यमसे जो बातचित करायी है वह आज की राजनीतिक भाषणबाजी और नारेबाजी की ओर संकेत है। निम्नलिखित वार्तालाप देखिए —

नटी : गलत बात। कारीगरी मौत की नहीं, कारीगरी है उन लोगों की जबान की जो श्रध्दांजलियों और गुणगान की पालिश से मरे हुओं की मिट्टी को भी सोना बना देते हैं।

सूत्रधार : नहीं नहीं। जबान कारीगर की छेनी नहीं। जबान तो सबसे गहरी चोट करनेवाला हथियार है।

नटी : तुम्हारा मतलब है कि मुनियों की जबान – उनके शापों और मंत्रो से ही अत्याचारी वेन की मौत हुई, उस रस्सी से उसका गला नहीं घोटा गया?"[37]

नाटककार माथुरजीने "पहला राजा" नाटक में अत्री को भाषणबाज के रूप में कुछ मात्रा में प्रस्तुत किया है। वे के संहार के समय बड़े-बड़े भाषण देते है। नया शासक के बारे में उनकी भाषणबाजी उनके ही शब्दों में देखी जा सकती है – "नया शासक! नया भूपति! – – – सुना आपने गर्ग?– – – और मेरे उन भाषणों की याद क्या होगी जो मैंने वेन के संहार के समय दिए थे? कि शासक का पद बेकार है, मनुष्य सब बराबर है, कि धर्म ही शास्ता है, और हम ऋषि-मुनि ही धर्मपद के प्रदर्शक हैं? क्या होंगे वे ओजस्वी शब्द?"[38] इतना ही नहीं शुक्राचार्य भी अत्री को "वाग्वीर"[39] की संज्ञा देते है।

पृथु को पहला राजा घोषित किए जानेपर सूत और मागध पृथु की बडी "स्तुति"[40] करते हैं। यह स्तुति भी राजनीतिक कर्मचारी या अधिकारियों की भाषणबाजी या नारेबाजी से अलग नहीं है। इसमें संदेह नहीं हैं कि राजनीतिक भाषण और नारेबाजी का एक हत्यार है किसी को बनाने और बिगाडने में इस हत्यार का उपयोग किया जाता है।

इ) आर्थिक परिप्रेक्ष्य –

1) मजदूर संगठन का प्रयास –

आधुनिक चिन्तन प्रणाली के अनुसार समाज के दो वर्ग ही माने जाते हैं 1) उत्पादक वर्ग और 2) भोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग के अंतर्गत मजदूर वर्ग आ जाता है। यहाँ मजदूर का अर्थ श्रमिक है। मार्क्स के अनुसार उत्पादनकर्ता मजदूर ही है और मजदूरों के कारण आर्थिक उत्पादन भी बढ जाता है। जिसका लाभ भोक्ता या पूंजिपति उठाते हैं। आज के वर्तमान युग में मजदूर-संगठनाओं की शक्ति को सर्वश्रेष्ठ शक्ति मानी जाती है क्योंकि इन मजदूरों के कंधोंपर देश का अतीत और भविष्य टिका रहता है। इस मजदूर वर्ग में वे लोग आते हैं जो समाज के लिए आवश्यक सेवा करते हैं, जिसमें किसान, मजदूर, क्लर्क, लेखक, अध्यापक, चित्रकार, अभिनेता, कलाकार, डॉक्टर, इंजिनियर, मिल-मैनेजर आदि लोगों का समावेश होता है। इतने सभी क्षेत्रों में मजदूरों का अस्तित्व असंख्य रूप में होकर भी पूँजिपतियों द्वारा उन पर अत्याचार किया जाता है, उनके वेतन कम दिए जाते हैं, उन्हें काम अधिक करना पडता है, छुट्टियाँ नहीं दी जाती, यह सब अत्याचार होते हैं उन लोगों से जो आर्थिक दृष्टि से [illegible] होते हैं जिनका नाम है पूँजिपति। मार्क्सवादी विचार शैली के अनुसार इन पूँजिपतियों का पतन कभी

नहीं होनेवाला और जो असम्भव भी है। इसीलिए उनके प्रति क्रांति करनी चाहिए। अपने अन्याय को स्पष्ट करते हुए न्याय के लिए संघर्ष करना चाहिए और उन्हें न्याय मिलाने के लिए एकत्रित होना चाहिए जिससे एक सशक्त "मजदूर संगठना" जन्म लेगी। जो पूँजिपतियों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए बुलंद आवाज में घोषणा दे सकेगी। मार्क्स ने "विश्व के समस्त मजदूरों के लिए एकता का आव्हान किया था। उसके अनुसार श्रमिकों का न तो कोई देश है और न उसकी कोई राष्ट्रीयता है। साम्यवाद एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रह सकता। समस्त विश्व साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आना चाहिए।"[41]

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने अपने "कोणार्क" नाट्य-कृति में राजसत्ता के विरूद्ध जनशक्ति का संघर्ष प्रगतिवादी दृष्टि से चित्रित किया है। इसके लिए उन्होंने राजसत्ता जो शोषक है और जनशक्ति जो शोषित है उनके बीच में संघर्ष खडा करके समकालीन मजदूर संगठन का विचार स्पष्ट किया है। शोषण (सत्ता) और विद्रोह (जनशक्ति) की समस्या को नाटकीय संघर्ष के रूप में स्थापित किया है। राजसत्ता के विरूद्ध किया गया जनशक्ति का संघर्ष आधुनिक व्यंजना प्रदान करता है। उत्कल नरेश नरसिंहदेव का महामात्य राजराज चालुक्य समकालीन शोषक वर्ग का प्रतीक है, तो धर्मपद आज के शोषित मजदूर वर्ग का और असहाय जनशक्ति तथा अत्याचार के विरूद्ध विद्रोह की प्रवृत्ति को जाग्रत करनेवाला प्रगतिवादी चेतना का प्रेरक है। महामात्य राजराज चालुक्य द्वारा शिल्पीगण पर किये अत्याचार उसे असह्य होते हैं और उसमें विद्रोह की भावना जन्म लती है, सुन्दर मूर्तियों को बनानेवाले हाथ असह्य अत्याचार को जवाब देने के लिए विद्रोही बनकर शस्त्र उठाकर लडने के लिए तैयार होते है। वस्तुतः यही प्रगतिशील चिन्तन की मूल चतना है। अतः स्पष्ट होता है कि नाट्य-कृति में धर्मपद शोषण के विरूद्ध जनशक्ति को संगठित करता है। अत्याचारियों का जवाब देते हुए धर्मपद कह उठता है – " तो सुनों शैवालिक! अपने नये स्वामी के पास यह अंगारोंभरा संदेश ले जाओ कि कलिंग – नरेश श्री नरसिंहदेव महाराज, अत्याचारी विश्वासघातियों की धमकियों की चिंता नहीं करते। वे आज अकले नहीं हैं, आज उनके पीछे वह शक्ति है, जिससे धरती थर्रा उठेगी दीन-निर्धन प्रजा की शक्ति जो कोणार्क के शिल्पीयों और मजदूरों में दुदर्दम सेनाओं का बल भर देगी। कोणार्क का मंदिर आज दुर्ग का काम देगा। जाओ, हमें चुनौती स्वीकार है।"[42]

इस प्रकार नाटककार माथुरजी ने "कोणार्क" में मजदूर संगठन के प्रयास को चित्रित किया है। धर्मपद के मजदूर संगठन में उनका वेतन तथा उनकी छीन ली गई भूमि के बारे में ही विचार व्यक्त किए गए हैं। यहाँ धर्मपद मजदूरों का प्रतिनिधि ही है।

2) आर्थिक शोषण से मुक्ति –

जगदीशचन्द्र माथुरजी की "कोणार्क" नाट्य-कृति अत्याचारी राजतंत्र के साथ आर्थिक

संघर्ष के जर्जर युग का विद्रोह पूर्ण संदेश देती है। "कोणार्क" में शाषणमुक्त आर्थिक सिथति का वर्णन नाटककार ने किया है। हमने देखा है कि तत्कालीन महामात्य राजराज चालुक्य द्वारा जनता पर अत्याचार ही हो रहे हैं। उन अत्याचारों में शिल्पी जनता की आर्थिक स्थिति कमजोर थी, क्योंकि महामात्य द्वारा जनता को आर्थिक सहायता देने के बजाय उनका आर्थिक शोषण हो रहा था। जिसका उदाहरण है महामात्य द्वारा बंद किया हुआ मुद्राओं का पुरस्कार तथा शिल्पी जनता को दी गई जमीन वापस लेना। किन्तु इस शोषण के प्रति युवक शिल्पी धर्मपद प्रगतिशील चिन्तन से विद्रोह व्यक्त करता है। आचार्य विशु के सामने वह अपने मन की पीड़ा व्यक्त करते हुए कहता है कि "- - - इस मंदिर में बरसों से 1200 से उपर शिल्पी काम कर रहे है। इनमें से कितनों की पीडा से आप परिचित है? जानते हैं आप कि महामात्य के भृत्यों ने इसमें से बहुतों की जमीन छीन ली है। कइयों की स्त्रियों को दासियों की तरह काम करना पडा है, और उधर सारे उत्कल में अकाल पड़ रहा है।"[43] धर्मपद के इस वक्तव्य से यह स्पष्ट होता है कि शिल्पी जनता आर्थिक दृष्टि से दुर्बल बनी है उसे सहन नहीं होता, उसी कारण वह इसके प्रति विद्रोह व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। उसके लिए वह कोणार्क मंदिर पूर्ण होने पर सिर्फ एक दिन के महाशिल्पी के सभी लेने की माँग करता है क्योंकि वह अपने दीन-दलीत शिल्पी जनता के आर्थिक शोषण का चित्र अपने उत्कल नरेश के सामने रेखांकित करना चाहता है। अतः धर्मपद को वह अधिकार भी प्राप्त होता है। तब वह आर्थिक शोषण में होनेवाली पीड़ा पुरातन विचारों से सहन न करते हुए प्रगतिशील चिन्तन से अपने प्रजा हित दक्ष राजा नरसिंहदव के सामने निर्भिकता से प्रकट करता है, जैसे कि "देव, अनेक शिल्पी अपने - अपने ग्रामों में स्त्री-बच्चों को थोडी-सी जमीन और खेती के सहारे छोडकर आये हैं। वही मूल जीवन स्त्रोत सूख रहा है।"[44] इस प्रकार नवयुवक शिल्पी धर्मपद आर्थिक शोषण के विचारों में पुरातनता से जीना नहीं चाहता बल्कि उसके प्रति गहरी निरागसता स्पष्ट करता है। दीन-दलित शिल्पी जनता के आर्थिक शोषण के प्रति धर्मपद न्याय की आवाज उठाता है। ग्रामों में रहनेवाले किसान, वन और अतिरिक्त के शबर और अगणीत मजदूरों का जीवन आर्थिक शोषण से मुक्त करना चाहता है। इस दृष्टि से माथुरजी का नाटक लिखने का दृष्टिकोण आधुनिक है जैसे कि साधारण जनता का कल्याण हो, आर्थिक विषमता तथा अन्याय दूर हो, इतना ही क्या कोई भी श्रम साध्य है और श्रम के बदले में वेतन की माँग करना कलाकारों का हक है। इस हक पर अत्याचारी महामात्य चालुक्य की पैशाचीक हँसी और उपरोधिकता भी दृष्टव्य है - "मैंने सुना है कि शिल्पी लोग राज्य के विरूद्ध सिर उठा रहें है, सुवर्ण-मुद्राओं में वेतन माँगते हैं।"[45] इस तरह "कोणार्क" में अंकित वर्ग संघर्ष का यह तरीका आधुनिक है, प्रगतिवादी विचारधारा का वाहक है।

3) ठेकेदारी और भ्रष्टाचार का रहस्य -

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "पहला राजा" नाटक में आधुनिक ठेकेदारों की ठेकेदारी तथा उनका भ्रष्टाचार विशद किया है। उन्होंने यह दिखाया है कि आजकल ठेकेदार सरकार से बड़े-बड़े भवन, सडक, बांध आदि के ठेके लेते हैं। परन्तु अवश्यकतानुसार रूपया मिलनेपर भी कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। ठेकेदार सरकार से प्राप्त सारा रूपया अपने व्यक्तिगत कार्यों में खर्च करना चाहता है और मजदूरों को उचित वेतन तथा योग्य सुविधाओं से वंचित रखते हैं। "पहला राजा" नाटक में यह दिखाया गया है कि भृगुवंशी आश्रम को टोकरियों और कुदालियोंकी ठेकेदारी दे दी जाती है और अत्रिय आश्रम को मजदूरों की सप्लाय की ठेकेदारी। नदी पर बांध बांधने का काम शुरू होता है लेकिन उस कार्य में इन दो आश्रमों के ठेकेदार बाधा डालते हैं और बांध पूरा नहीं हो पाता। राजा पृथु के शब्द यहाँ महत्वपूर्ण है - "- - - इन आश्रम को तो बस अपनी आमदनी की फिक्र है।- - - और अगर यह बांध ठीक समय पर पूरा न हुआ तो?"[46] आखिर पृथु के शब्द एक सत्य बन जाते है, बांध टूट जाता है। पृथु और कवष की बांध योजना असफल होती है। आजकी राजनीति में भी यह दिखायी देता है कि योजनाएँ निधारित धनराशी खर्च करने पर भी पूरी तरह सफल नहीं हो पाती। शुक्राचार्य, आचार्य गर्ग को टोकते समय ठेकेदारी की पोल खुल जाती है। शुक्राचार्य के शब्दों में - "आचार्य गर्ग।- - - साफ बात है, आप, दो में एक बात चुन लीजिए - अपने परिवार, कुटुम्ब, कन्या अर्चना और आश्रम का भविष्य या सरस्वती की धारा में पानी, जिसका फायदा होगा बस छोटे-मोटे किसानों, निषादों और बचे-खुचे असुरों की।"[47] इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि ठेकेदार अपने लाभ ही सोचते हैं। जनता के हित के प्रति ध्यान ही नहीं देते।

माथुरजी ने "पहला राजा" नाटक में यह भी दिखाया है कि भृष्टाचार का एक कारण ठेकेदारी है। प्रस्तुत नाटक में अत्री और गर्ग अपने अपने ठेकेदारी के हितों के लिए पृथु की रानी अर्चना को भी विचलित करने की कोशिश करते है। लेकिन अर्चना इन आश्रम के ठेकें को महत्त्व नहीं देती। बांध योजना में आत्रेय वंश और भृगुवंश की ठेकेदारी में मुख्यतः अपने हित की स्वार्थी भावना दिखाई पडती है। बांध कार्य में आवश्यकता के अनुसार मजदूरों को न भेजना और मजदूरों की आमदनी में कटौती की दृष्टि से देखना इन दोनों ठेकेदारों की स्वार्थी भावंना का द्योतक है। वास्तव में यह एक प्रकार का भृष्टाचार ही है। अपने स्वार्थ को साध्य करने के प्रसंगवश अत्रेयवंश और भृगुवंश के ठेकेदार आपस में लड़ते-झगड़ते दिखाई पडते है। उनकी स्वार्थजन्य और ईर्षायुक्त भावना को नाटककार ने मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है -

गर्ग : शुक्राचार्य, राजा तो सुना है आप ही से तीन सौ मजदूरों की माँग करने के लिए गये है।

शुक्राचार्य : इसीलिए तो मैं इधर चला आया।

अत्रि : भृगुवंश की चाल को राजा क्या समझेगा। लेकिन हम समझते है, शुक्राचार्य। तीन सौ मजदूरों को इकठ्ठा यहाँ भेजकर आप हमारे आश्रम के मजदूरों की दर कम कर देना चाहते हैं।

शुक्राचार्य : क्या बुराई है। वह सब अनाज मजदूरों के पास तो पहुंचता नहीं है। - - - - अत्रि, आपके आश्रम के भंडार में सुनता हूं अब जगह ही नहीं है।

अत्रि : कितनी टोकरियाँ और कुदालियाँ पहुँचाइ आपने शुक्राचार्य? सुना है जितनी के लिए आपने पेशगी ली थी, उसकी आधी भी नहीं पहुँची। - - - इतना सारा धन हजम करने की शक्ति भृगुवंशीयों मे ही हैं आचार्य।"[48]

इस प्रकार हम देख सकते है कि नाटककार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की ठेकेदारी प्रथा और भ्रष्टाचार के रहस्य को खोल दिया है।

4) <u>सामूहिक श्रम की सार्थकता</u> -

इसमें संदेह नहीं है कि परिश्रम ही जीवन है। भगवतगीता मे कर्म सिद्धान्त का महत्त्व विशद किया गया है। फल की अपेक्षा न करते हुए कर्म करना मनुष्य का कर्तव्य है। यह गीता का संदेश है लेकिन "पहला राजा" नाट्य-कृति में माथुरजी ने आधुनिक कृषिसिंचाई की दृष्टि से सामूहिक परिश्रम को महत्त्व दिया है जो आधुनिक प्रगतिशील चिन्तन का एक द्योतक है। कार्लमार्क्स ने श्रम का महत्त्व स्वीकारा है और सामूहिक श्रम के द्वारा सब की उन्नति हो सकती है यह बताया है। यहाँ नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने भी "पहला राजा" नाटक में सामुहिक श्रम को महत्त्व दिया है। नाटककार ने "मंत्रिमंडल" शब्द के बदले "आचार्य मंडल" शब्द का प्रयोग किया है। उर्वी, पृथु से कर्म पुरूष बनने के लिए कहती है। वह कहती है कि "तुम्हारा पुरूषार्थ सिर्फ युद्ध और संघर्ष में ही तो नहीं है। मैं वसुंधरा हूँ, मुझे दुहकर अभीष्ट वस्तुओं को निकालने में भी तुम्हारा पुरूषार्थ है और तुम्हारी प्रजा का धर्म है। तुम आर्यकुल के पहले राजा हो। हे राजन् कर्मपुरूष बनो।"[49] पृथु उर्वी की आज्ञा मानता है और रेगीस्तान में जल निकालने का जो प्रयत्न कवष और दस्यु तथा आचार्य लोग करते थे उन सबको लेकर सूखी सरस्वती से जल निकालने के प्रयास में सम्मिलित होता है। कवष और अन्य आर्येतर लोग सरस्वती की सूखी धारा में एक यंत्र के द्वारा नहर खोदकर जल निकालने का प्रयत्न करते हुए सफल हो जाते हैं। आगे चलकर पृथु भी उनको सहायता करता है और धरती के गर्भ में जो कुछ मानवजीवन के लिए उपयुक्त है उसे प्राप्त करने के लिए सामूहिक श्रम को महत्त्व देता है। सामूहिक परिश्रम की विशद व्याख्या पृथु के शब्दों में सहज ही दिखाई देती है - "भूमिरूपा गौ को दुहने के लिए अनेक मजबूत हाथ उठेंगे, भिन्न-भिन्न प्रकार का दूध निकालेंगे। अनाज-रूपी दूध को मैं दुहूँगा, हलधर किसान बछडा होंगे, हाथों की अंजलि दोहनपात्र होगा।"[50]

स्वातंत्र्योत्तर भारत में सामूहिक कृषि-सिंचाई योजना जो कार्यवाहीत की जाती है उसका संकेत पृथु के शब्दों में मिलता है जो नाटककार के आधुनिक चिन्तन प्रणाली का द्योतक है।

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने मानवजीवन की उन्नति के लिए व्यापारी, शिल्पी, विलासी, ज्ञानी लोग, कलाकार आदि सबसे सामूहिक परिश्रम का महत्त्व स्वीकार किया है। "वसुंधरा उपभोग्य है" और उसका उपभोग प्राप्त करने के लिए सबके परिश्रम आवश्यक है। सबके परिश्रम से ही धरती से हम सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं और हमारी उन्नति कर सकते हैं। यह नाटककार का आधुनिक दृष्टिकोण है। जिसको नाटककार ने पृथु और कवष के वार्तालाप से व्यक्त किया है -

कवष : जल-रूपी दूध को मैं दुहूँगा, प्यासे खेतों का बछड़ा होगा, नदी और तालाब पात्र होंगे।

पृथु : सोना, चाँदी, ताँबा इत्यादि धातुओं को व्यापारी दुहेंगे, शिल्पियों का बछडा होगा, अलंकारों का पात्र।

कवष : विलासी लोग मदिरा-रूपी दूध दुहेंगे, मधुशाला का वत्स होगा, मधुबाला का पात्र।

पृथु : ज्ञानी लोग गुरू को बछडा बनाकर, वाणी-रूप पात्र में वेदरूपी दूध को दुहेंगे।

कवष : कलाकार लोग गंधर्व अप्सराओं को बछडा बनाकर कमलरूपी पात्र में संगीत और सौंदर्य का दूध दुहेंगे।

पृथु : कौन नहीं होगा दोहक? सिद्ध और पितृगण, यक्ष और दैत्य, पशु और जीव-जन्तु, वृक्ष और पर्वत! ओ विश्वरूपा वसुंधरे! अपने बाहुबल से मैं तुझे समतल करूँगा, अपने पुरूषार्थ से सबको जुटाकर तेरी अनंत सम्पदा को मानवमात्र के लिए प्रस्तुत करूँगा।"[5]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि नाटककार ने मानव के सामूहिक परिश्रम को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। वास्तव में परिश्रम ही पुरूषार्थ है। इस दृष्टि से माथुरजी ने पुरूषार्थ की नयी व्याख्या की है।

ई) <u>धार्मिक परिप्रेक्ष्य</u> -

1) <u>परम्परागत अंधश्रद्धा और अंधरूढ़ियों का विरोध</u> -

भारत मूलतः धर्मप्राण तथा अध्यात्मप्राण देश रहा है लेकिन परिवर्तन के सिद्धान्त के अनुसार उसकी धर्म, अध्यात्म आदि धारणा में अब परिवर्तन दिखाई देता है। नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने प्राचीन अंधरूढि, अंधविश्वास आदि का विरोध आधुनिक जीवन सन्दर्भ में किया है। "पहला राजा" नाटक का प्रारम्भ अतिशय महत्त्वपूर्ण है -

नाटक के प्रारम्भ में नाटककार ने ईश्वर या देव के प्रति आनास्था प्रकट की है। आरम्भ में सूत्रधार की प्रार्थना को देखकर नटी प्रवेश करके कहती है - भला नाटक शुरू करते समय आजकल कोई प्रशंसा करता है? सूत्रधार के आधुनिक कहने पर फिर नटी कहती है - "खूब तुम समझते

हो कि आजकल का साइंटिस्ट, पोइट और फिलासाफर तुम्हारे साथ परमात्मा की वंदना करेगा - परमात्मा, जिसकी हस्ती अब मखौल की चीज भी नहीं रह गयी है? इस पर सूत्रधार ईश्वर में आनास्था प्रकट करता हुआ कहता है - "मै परमात्मा की स्तुति नहीं कर रहा था।"[52]

नाटक के दूसरे अंक में भी नाटककार न देवत्व के प्रति अनास्था प्रगट की है और मानव का महत्त्व विशद किया है। लोग सामान्यतः देवताओं की स्तुति अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए करते है वास्तव में यह अंधश्रद्धा है। इस अंधश्रद्धा को प्रतीकात्मक शैली में नाटककार ने प्रस्तुत किया है। दवताओं की स्थिति उन फूलों के समान है जो वृक्षों की उंची डालों पर लटके हुए है, वे न फल बन पाते है, न सूखते है और न बीज ही देते है। नटी सूत्रधार से प्रश्न करती है कि "कौन है ये गंधहीन, निर्जीव, पर मनोरम प्रवंचनाएँ जिन्हें न हम छू सकते है, न खा सकते है, न धरती पर बो सकते है।"[53] सूत्रधार उत्तर देता है - "देवता ही वे फूल है।"[54] इस प्रकार देवता मनुष्य की सहायता करने में सक्षम नहीं है। मनुष्य को अपनी सहायता स्वयं करनी पडती है।

भारत बुनियादी संस्कृति कर्म काण्ड से युक्त है, इच्छित वस्तु प्राप्त करने के लिए तत्कालीन ऋषि मुनियों द्वारा कर्मकाण्ड किया जाता था, प्राचीन यज्ञ हवनों की कल्पना आधुनिक जीवन में स्वीकार नहीं की जाती, आजकल आधुनिक युग में दवताओं के नाम पर किये जानेवाले यज्ञ हवनों को अंधश्रद्धा और अंधरूढि के रूप में ही देखा जाता है। पुरातन यज्ञ, हवन आजकल व्यर्थ, हवन और वेद मंत्रों को व्यर्थ बताया है। नाटककार ने मोहंजोदाडो की पृष्ठभूमि पर सूखे रेगीस्तान में सामान्य जनता को पानी मिलने के लिए भूचण्डि की पुजा का चित्र प्रस्तुत किया है, नाटककार ने यह दिखाया है कि भूचण्डि के पीछे बिखरेबालोंवाली एक स्त्री दर्शायी है जिसपर "देवी चढती"[55] है। ऐसा बताया गया है। भूचण्डि प्रसंग में पृथु उर्वी से कहता है कि भूचण्डि के नासपुटों से उठनेवाली विषैली आँधी के कारण मेघा धरती पर नहीं उतरती है और इसी कारण रेगीस्तान में पानी नहीं आ सकता इसलिए पृथु कहता है कि मै भूचण्डि का "विनाश करूंगा"[56] उस समय उर्वी देवताओं के प्रति अनास्था प्रगट करती है और पृथु से कहती है "नहीं, नहीं राजन। तुम्हारे देवता अधूरे है, इसलिए कि आसमान क देवता धरती माँ के कंधों के बिना पंगु रहेंगे, पंगु, निर्जीव, निर्बल।"[57] उर्वी के माध्यम से नाटककार का अन्धश्रद्धा और अंधरूढि के खिलाफ बर्ताव स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।

2) <u>धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिक एकता</u> -

भारतीय संविधान के अनुसार भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। संविधान के अनुसार धर्म के आधार पर छोटा बडा भेद नहीं है। हर एक व्यक्ति को अपने अपने धर्म का पालन करने का पूरा-पूरा अधिकार है। भारत में अनेक धर्मों के लोग निवास करते हैं। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी

यहूदी, बौद्ध, जैन, सिख आदि धर्मों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन कर रहे है। भारत में पूजा-अर्चा, विधि-विधान, दार्शनिक मान्यताएँ, नैतिक धारणाएँ आदि के पचड़े में से गुजर रहा है। भारत का धर्म वर्णगत या जातिगत संस्कारों तक सीमित नहीं रहा है, अब वह विश्वव्यापक बन गया है। और मानव को केन्द्रबिन्दु मानकर उसकी प्रतिष्ठापना "मानव-धर्म" में हुई है।

"शारदीया" की कथावस्तु को उजागर करने के लिए माथुरजी ने समाज के अन्तर्गत फैले धार्मिक रूढ़ियों को विशेष महत्त्व दिया है। विशेष महत्त्व इसलिए कि नाटककार माथुरजी ने इसी धार्मिक रूढ़ियों में नरसिंहराव द्वारा प्रगतिशील चिन्तन व्यक्त करने का प्रयास किया है, जो नाट्य-कृति में सफल हुआ है। वैसे देखा जाय तो नाट्य-कृति का ऐतिहासिक बिन्दु सन् 1794 में स्थित मराठा इतिहास में है। जब हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ समझते थे और एक दूसरे के धर्म की अवहेलना करते थे। नाटककार ने इन्हीं धार्मिक रूढ़ियों को केंन्द्र बनाकर धार्मिक एकता के प्रति आधुनिक विचार स्पष्ट किये हैं, जो धार्मिक स्थितियों की दृष्टि से यथार्थ बन गए हैं। माथुरजी के धार्मिक क्षेत्र में स्पष्ट हुए प्रगतिवादी विचार खर्दा युद्ध के पहले नरसिंहराव द्वारा की गयी घोषणाओं से ही हमारे सामने आते हैं। जैसे – "पहली घोषणा तो यह कि दो राज्यों में हिन्दु और मुसलमानों को अपने धर्म-कर्म करने की पूरी आजादी होगी, न दखन में गोवध होगा न महाराष्ट्र में मुसलमानों पर रोकटोक। और दूसरी घोषणा यह कि हिन्दु और मुसलमान दोनों परमात्मा की एक बराबर संतान है। इसलिए न हिन्दु-मंदिरों पर आघात होगा, न मुसलमान मजारों, पीरों और पैगम्बरों का अपमान किया जाएगा। दोनों एक-दूसरे के साथ मेल-मिलाप से रहेंगे-एक माँ की गोदी में दो भाई।"[58] यह आधुनिक विचार आज के प्रत्येक प्रवक्ता के विचार हैं, जिसे नाटककार ने बहुत पहले नरसिंहराव के संवादों में व्यक्त किए है। तब हिन्दु और मुसलमानों के मन में एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता नहीं थी, वे एक दूसरे के कट्टर दुश्मन थे। आज की तरह व एक-दूसरों के पवित्र स्थानों का विनाश करते थे, ऐसी परिस्थिति में नाटककार ने अपने मन में छुपी हुई धार्मिक एकता के विचार यहाँ नरसिंहराव के माध्यम से स्पष्ट किये हैं। जैसे – "यह क्या कह रहे हैं बाबा फडके? क्या मराठों का युद्ध मुसलमानों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए हो रहा है? हमारी ही फौज में कितने ही तोपची कितने रिसालेदार मुसलमान है, जिनकी ईमानदारी और हिम्मत पर हमें गौरव है। मराठा राज में हर जगह सैकडों मुसलमान घराने चैन की जिन्दगी बिता रहे हैं।"[59]

अतः इन विचारों में जो मुसलमानों के प्रति आस्था व्यक्त हुई है यह आस्था नरसिंहराव की नहीं है, यह तो नाटककार के मन में बसे हुए प्रगतिशील चिन्तन की आस्था है। इस तरह शारदीया नाट्य-कृति में चित्रित हिन्दू-मुस्लिम एकता का वर्णन एक तरह से प्रगतिशील चिन्तन ही है।

लोकजीवन की नई व्याख्या

(1) नव कलाकार : सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने ग्रामीण जीवन को देखा है, परखा है, समझा है। ग्रामीण जनता की दुरवस्थिति को अच्छीतरह से जाना है और इसी कारण ग्रामीण जीवन के प्रति उनके मनमें गहरी आस्था है। माथुरजी ने "कोणार्क" नाट्य-सृष्टि में लोकजीवन की झाँकि प्रस्तुत की है। कोणार्क का धर्मपद उत्कल के लोकजीवन को साकार करता है। धर्मपद स्वयं एक आधुनिक शिल्पी है, कलाकार है लेकिन वह लोकजीवन को भली-भाँति जानता है। वह श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को जानकर यह स्पष्ट करता है कि किसान खेती में काम करता है पसीना बहाते है लेकिन उनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, नौका खेनेवाला मल्लाह, दूर दूर तक पानी में नाँव खिंचते है लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है, बेचारा लकडहारा दिनभर कुल्हाडी से लकडी काटता है लेकिन उसका पेट खाली ही है। लोककलाकार के साथ साथ किसान, मल्लाह, लकडहारा आदि की दयनीय स्थितिका यथार्थवादी चित्र हम धर्मपद के शब्दों में देख सकते हैं "जब मैं इन मूर्तियों में बंधे रसिक जोडो को देखता हूं तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, केशों तक धारा के विरुध्द नौका को खेनेवाले मल्लाह की, दिन-दिन भर कुल्हाडी लेकर खटनेवाले लकडहारे की। ---- इनके बिना जीवन अधूरा है।"[60]

माथुरजीने राजनीतिक अत्याचार से पीडित साधारण जनता को भी चित्रित किया है, महामात्य चालुक्य के अत्याचार से सैकडों, हजारों किसान, असंख्य मजदूर आदि दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे है। वे त्राहि त्राहि कर रहे हैं। उनके मुख होकर भी मूक है। ग्रामीण जनता पर होनेवाले अत्याचार की कल्पना धर्मपद नरसिंहदेव को देता है, जिसमें तत्कालीन लोकजीवन की झाँकि दिखाई देती है। धर्मपद के शब्दों में - "ग्रामों में रहनेवाले सैकडों-हजारों किसान, बन और अटीविक्त के शबर और वे अगणित मजदूर, जिनके ढोये हुए पाषाणों को हम शिल्परूप देते है, देव, वे सभी आज त्राहि त्राहि रहे हैं। यदि वे बोल पाते तो ---- "[61]

यहाँ नाटककारने लोकजीवन की नई व्याख्या स्पष्ट की है। एक युवा शिल्पी स्वयं श्रमीक जनता का प्रतिनिधि बन जाता है और उनके दुःख दर्द को राजा के सामने पेश करता है इतनाही नहीं वह उस सर्वहारा श्रमीक वर्ग का संगठन करता है और चालुक्य के अत्याचार को चुनौती देता है और उस चुनौती में अपना बलिदान देकर अमर हो जाता है। धर्मपद के द्वारा श्रमीका का यथार्थ चित्रण तथा स्वयं श्रमीक कलाकार होकर भी श्रमिकों के अधिकार और उनकी रक्षा के लिए लड़ना झगड़ना और मरना लोकजीवन की नई व्याख्या को प्रस्तुत करता है। कलाकार के माध्यमसे लोकजीवन की नई व्याख्या प्रस्तुत करने का नाटककार का उद्देश्य उनके व्यक्तित्त्व का प्रतिफलन ही है।

(2) सफल जीवन के लिए कला का आधार

"शारदीया" का नरसिंहराव माथुरजी की कल्पित पात्र सृष्टि है लेकिन नाटककारने नरसिंहराव के चरित्र-चित्रण में एक नई दृष्टि रखी है। नरसिंहराव मूलतः एक मराठा सैनिक है विशेषतः खर्दा के युध्द में वह भेदिया का काम करता है। उसका शर्जेराव घाटगे की बेटी बायजाबाई से प्रेम हो जाता है और वह उससे शादी भी करना चाहता है लेकिन बायजाबाई की माँ उसके सामने शर्त रखती है कि वह पहले पूँजी प्राप्त करे और बादमें बायजाबाई से शादी करे। बायजाबाई की माँ से प्रभावित होकर नरसिंहराव बुनाई के काम में रस लेता है। हैदराबाद के मुसलमान कारीगरों की सहायता से वह बुनाई काम में प्रवीण होता है। उस कारीगरी में उसे आवश्यक पूँजी प्राप्त होती है। वह अपने प्रेयसी के लिए पाँचतोले की साडी कारागार में बुनता है, इसका प्रमुख कारण उसका बायजाबाई से अटूट प्रेम। एक सैनिक का कारीगर बनना विशेष बात है। इसमें नाटककार का आधुनिक दृष्टिकोण सहज ही नजर आता है। भारत में प्राचीन काल से बुनाई की कला का अपना विशेष महत्त्व है। महीन कपडे बुनने की कला भारत की प्राचीन कारीगरी का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। नाटककारने शारदीया में यह दिखाया है कि बुनाई की कला वास्तव में एक लोकजीवन ही है। भारत के ग्रामीण लोगों में आज भी लोककला का चित्र दिखाई देता है। नरसिंहराव का हैदराबाद के मुसलमानों से बुनाई का काम सिखना अपने उंगलियों में सुराख बनाते हुए धागा उसमें से पिरोकर साडी बुनना लोककला की विशिष्टता ही है। .इस कलामें नरसिंहराव जैसा साधा सैनिक एक उत्कृष्ट कारिगर बनकर अपनी प्रेम की पूर्ति के लिए पूँजी इकठ्ठा करने का प्रयास करता है। अपनी व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा अपने भावीपत्नी के लिए वह कला के माध्यम से वह पूँजी प्राप्त करता है, खुद का पेट पालने के लिए नहीं। दुर्भाग्यवश शर्जेराव घाटगे की चाल से बायजाबाई की शादी दौलतराव सिंधिया से हो जाती है और नरसिंहराव को आजीवन कारावस में बायजाबाई की स्मृति में अपना जीवन बिताना पडता है। नाटककारने यहाँ यह दिखाने का प्रयास किया है कि लोककला के माध्यम से श्रेष्ठ कलाकार पूँजी प्राप्त कर सकता है, साथ ही साथ नरसिंहराव जैसा सच्चा प्रेमी अपने प्रेम के कारण एक ओर सैनिक का काम करता है तो दूसरी ओर बुनाई की श्रेष्ठ कारीगरी। यह विशेष उल्लेखनीय बात है। नरसिंहराव का सच्चा प्रेम कारावास में अपनी प्रेयसी की स्मृति करते बुनाई की कला में परिणत हो जाता है। कारावास में गढपति से नरसिंहराव कहता है कि- "हैदराबाद के मुसलमान कारीगरों का हुनर मेरी उंगलियों मे बस गया है। सरदार! वही मेरा संबल होगा। जब तक जिन्दा हूँ, तब तक बुनता रहूँगा, रुपहले और सुनहरे पल्ले।"[62] इसतरह माथुरजी ने यहाँ लोककला का प्रयोग नरसिंहराव के लिए जीवन का संबल तथा सफल जीवन की अभिव्यक्ति के लिए ही किया है। जो एक दृष्टिसे लोकजीवन की नई व्याख्या ही है।

(3) जनजीवन की समृध्दि के लिए सामुहिक श्रम

जगदीशचन्द्र माथुरजी के "पहला राजा" नाटक में भी लोक जीवन की नई व्याख्या दिखाई पडती है। इतिहास और पुराण का आधार लेकर आर्य-आर्येतर सम्बंध को चित्रित किया है। इस नाटक मे कवष जो जंघापुत्र माना गया है। वह रेगीस्तान में जाकर सूखी सरस्वती नदी से पानी निकालने की कोशिश करता है और उसे दस्युकन्या उर्वी साथ देती है। यहाँ नाटककारने लोकजीवन की दृष्टि से देखा है। कृषिसिंचाई का प्रश्न आधुनिक युगबोध का दयोतक है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारत की समृध्दि के लिए और जन जीवन समृध्दि के लिए अनेक प्रकार की योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है। नाटककारने "पहला राजा" नाटक में यह दर्शाया है कि आर्येतर लोक देहातों में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें अनेक कठिनाईयोंका सामना करना पडता है। पानी की समस्या भी उनकी प्रमुख समस्या है। कवष और उर्वी तथा अन्य दस्यु एक यंत्र चलाकर सूखी नदी से पानी निकालने का प्रयास करते हैं और उनमें कामयाब भी होते है। नाटककारने यह दिखाया है कि आर्य-आर्येतर झगडा प्राचीनकाल से चला आ रहा हैं। प्राचीन ऋषि-मुनि यज्ञ कर्म मे होम-हवन में ही अपना जीवन बीताते थे। इस कर्म-काणु के लिए वे हर साल न्या जंगल जलाकर नयी खेती निर्माण करते थे। पृथु और उर्वी के इस वार्तालाप से यह बात स्पष्ट होती है ——

पृथु : ——हम लोक तो हर साल वैश्वानर अग्नि से नये जंगल जलाते है। जली हुई धरती पर उपज करते हैं।

उर्वी : यज्ञों से जली हुई मिट्टी को शीघ्र वर्षा का पानी बहा ले जाता है।

पृथु : तब फिर यज्ञ, फिर दावाग्नि और फिर नई मिट्टी। यही तो आर्य परम्परा है।

उर्वी : जानती हूँ, यही आर्य-परम्परा है। राजन् इसीलिए ब्रम्हावर्त में सूखा है, अकाल है,——।"[63]

अतः स्पष्ट है कि आर्य लोगों को यही परम्परा योग्य नहीं थी ऐसा उर्वी भी कहती है और इसीलिए उर्वी और कवष सूखी सरस्वती में नहर खोदकर पानी संचय करने की कोशिश करते हैं। इतनाही नहीं यहाँ पानी की योजना का कार्य सामुहिक परिश्रम से किया जाता है। कवष और उर्वी के साथ अन्य दस्यु सम्मिलित होकर यह कार्य करते हैं और बात में पृथु उन कार्य में सम्मिलित हो जाता है। यहाँ नाटककारने लोकजीवन की व्याख्या प्रस्तुत की है, क्योंकि प्रगतिशील चिन्तन में सामुहिक श्रम की महत्ता स्वीकार की गई है, और "पहला राजा" नाटक में भी कवष उर्वी और दस्यु सामुहिक श्रम करके आधुनिक कृषिसिंचन योजना का योग देते है। माथुरजीने यहाँ साधारण जनजीवन श्रमिकों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत

किया है और प्रगतिशील चिन्तन के अन्तर्गत लोकजीवन की नई व्याख्या की है साथ ही साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत की पंचवार्षिय योजनाओं की ओर भी संकेत किया है।

निष्कर्ष

* उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि आलोच्यनाटकों में प्रगतिशील चिन्तन का बहु आयामी स्वरूप दिखाई पडता है। नाटककार की दृष्टि पैनी है और इसी कारण सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में प्रगतिशील चिन्तन की ध्वनि मुखरित हो उठी है।

* नाटककारने इतिहास और पुराण की पृष्ठभूमिपर नाटक लिखे हैं। नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी अतीत की ओर जरूर आकृष्ट हुए हैं लेकिन अतीत या इतिहास का गुणगान करना उन्हें अभीष्ट नहीं है। उन्होंने अतीत की पृष्ठभूमिपर वर्तमान को ही चित्रित किया है और इस वर्तमान में भी उनका आधुनिक दृष्टिकोण यत्र-तत्र नजर आता है।

* नाटककार के प्रगतिवादी विचारों में मार्क्स का अन्धानुकरण नहीं है। मार्क्सवाद से प्रभावित होकर भी भारत की मिट्टी और यहाँ के वातावरण के अनुसार अपने प्रगतिवादी विचारों को व्यक्त किया है। माथुरजी की राष्ट्रीय अस्मिता स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है।

* नाटककार के प्रगतिशील चिन्तन में स्वातंत्र्योत्तर भारत की विशिष्टता भी दिखाई पडती है। ऐतिहासिक या पौराणिक पृष्ठभूमिपर नाटक लिखकर उन्होंने धर्मनिरपेक्षता साम्प्रदायिक एकता, कृषिसिंचाई योजना आदि को "पहला राजा" नाटक में अंकित करके अपना भोगा हुआ यथार्थ ही प्रस्तुत किया है।

* माथुरजी का ग्रामीण जनता से भी सम्पर्क रहा है। उन्होंने ग्रामजीवन को देखा, परखा और भोगा भी है। अतः "कोणार्क", "शारदीया" और "पहला राजा" नाटक में लोकजीवन की नई व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। विशेषतः लोकजीवन और लोककला का वर्तमान जीवन सन्दर्भ में देखने का उनका दृष्टिकोण आधुनिक ही है।

संदर्भ सूची

1. साहित्य का उद्देश्य – प्रेमचंद पृ.16–17, संस्क.1967
2. प्रगतिवादी काव्य का उदभव और विकास – डॉ.अजित सिंह, पृ.67–68, संस्क.1984
3. आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ : एक पुनर्मूल्यांकन – डॉ.गणेश खरे, पृ.89, संस्क.1976
4. वहीं, पृ.90
5. हिन्दी साहित्य – डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.306, संस्क.1969
6. मार्क्सवाद और हिन्दी कविता – डॉ.भक्तराम शर्मा, पृ.41, संस्क.1980
7. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.24, संस्क.1976
8. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ.गजानन सुर्वे, पृ.43, संस्क.1987
9. वहीं – पृ.43,
10. पहला राजा – डॉ.जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.50, संस्क.1976
11. वहीं – पृ. 51
12. कोणार्क – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 1, संस्क. 1976
13. वहीं – पृ. 34
14. वहीं – पृ. 35
15. वहीं – पृ. 12
16. वहीं – पृ.12
17. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ 25, संस्क. 1975
18. वहीं – पृ. 25
19. वहीं – पृ. 85
20. कोणार्क – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.72, संस्क.1986
21. वहीं – पृ. 72
22. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.22, संस्क. 1975
23. वहीं – पृ. 24
24. वहीं – पृ. 70
25. वहीं – पृ. 114

26 पहला राजा - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.24, संस्क. 1976

27. वहीं - पृ. 24

28. शारदीया - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.15, संस्क. 1975

29. वहीं - पृ. 33

30. वहीं - पृ. 98

31. वहीं - पृ. 48

32. पहला राजा - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 144, संस्क. 1976

33. वहीं - पृ.44-45

34. कोणार्क - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.39, संस्क. 1986

35. वहीं - पृ. 57

36. पहला राजा - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.114, संस्क.1976

37. वहीं - पृ. 15

38. वहीं - पृ. 22

39. वहीं - पृ. 92

40. वहीं - पृ. 45

41 मार्क्सवाद और हिन्दी कविता - डॉ.भक्तराम शर्मा, पृ.80, संस्क.1980

42. कोणार्क - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.58, संस्क.1986

43. वहीं - पृ. 35

44. वहीं - पृ. 52

45. वही - पृ. 38

46. पहला राजा - जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.90, संस्क.1976

47. वहीं - पृ 94

48. वहीं - पृ. 91-92

49 वही - पृ.82-83

50. वही - पृ.84

51. वहीं - पृ 84

52 वहीं - पृ.10-11

53. वही - पृ. 54

54 वहीं - पृ.55

55 पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.77, संस्क.1976

56 वहीं – पृ. 80

57. वहीं – पृ. 80

58. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 44–45, संस्क. 1975

59. वहीं – पृ. 39

60. कोणार्क – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.34, संस्क.1986

61. वहीं – पृ. 53

62. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.85, संस्क. 1975

63. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.81–82, संस्क. 1976